गृहस्थ धर्म की पूर्णता
(वानप्रस्थ व संन्यास सहित)

गृहस्थ धर्म की पूर्णता
(वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम सहित)

— श्रद्धेय स्वामी सनातन श्री
प्रस्तुति : श्रीमती राजेश्वरी शंकर,
संपादिका : "द टाइम्स ऑफ एस्ट्रोलोजी"

© राजेश्वरी शंकर एसोसिएट्स

राजेश्वरी शंकर एसोसिएट्स की ओर से श्रीमती राजेश्वरी शंकर द्वारा निष्काम पीठ प्रकाशन के लिए प्रकाशित एवम् मुद्रित

निष्काम पीठ प्रकाशन

1009, इन्द्रप्रकाश बिल्डिंग, 21, बाराखम्बा रोड,

नई दिल्ली . 110 001, दूरभाष : 3717738, 3717743

Email : editor@thetimesofastrology.com

www.thetimesofastrology.com

श्रद्धेय स्वामी सनातन श्री

श्री सनातन आश्रम, गौरा बाग, गुडम्बा थाने के पास,
कुर्सी रोड, लखनऊ – 226007
दूरभाष : 0522–361796, 361611, 362686

संन्यासी से परिचय

आज से लगभग पैतालीस वर्ष पूर्व एक अद्भुत तपस्वी का लखनऊ नगर में पदार्पण हुआ। विशाल देह, आजानु बाहु, चिर मुस्कान लिये ज्योतिर्मय शुभ आकृति! उस महान व्यक्तित्व ने नौ दिन के प्रवचन में (जो बाद में सनातन दर्शन की पृष्ठभूमि नामक, अमर ग्रंथ के रूप में प्रकाशित हुआ) जन मानव को ऐसा मोह लिया कि कोई भी उससे बिछुड़ने को तैयार न था।

परन्तु संन्यासी रुकने को तैयार न था। कारण? गृहस्थ और संन्यासी धर्म की अपनी मर्यादा है। गृहस्थी के बीच संन्यासी को अधिक समय नहीं रहना चाहिए। शेर और संन्यासी जंगल में ही शोभा देते है। उसका स्पष्ट मत था जो अटल था।

कुर्सी रोड पर अलीगंज हनुमान मन्दिर से लगभग चार किलोमीटर आगे "श्री सनातन आश्रम" की स्थापना हुई। संन्यासी रुक गया। लखनऊ वासियों के प्रेम के वशीभूत जैसा हो।

आश्रम बना। आत्म ज्योतियों से वातावरण मुखरित हो उठा। भक्त मित्रों ने कहा, "स्वामी जी अब चेला बनाइये, अन्यथा आश्रम खर्चा कैसे चलेगा?"

"चेलों के सहारे यह संन्यासी जी लेगा परन्तु जिनके नाम का वस्त्र धारण किया

है उनके सहारे कब जियेगा? सनातन स्वामी आगत को ईश्वर ही जानेगा। सेवा करेंगे तथा चरण रज से अधिक कामना नहीं होगी। जैसे नारायण रखेंगे, वैसे ही सबकी सेवा करते हुए तपेंगे। इच्छा जब नारायण से नहीं तो संसार से कैसी कामना?" संन्यासी का उत्तर था।

वर्षों उपरान्त! एक क्षण, एक शब्द भी तो नहीं बदला। संन्यासी ने न तो कभी किसी से इच्छा की, न ही चेला आदि का विचार ही उभरने दिया।

आश्रम के द्वार पर आते ही पुष्प वाटिका में लगा उक्त पट आगन्तुक का मौन, किन्तु अन्तर से मुखर स्वागत करता है।

"पुष्प और सन्तः"

परहित में मुस्कराते है। स्वामित्व की संकीर्णता में–

कुण्ठित हो, मर जाते है। कृपया इन फूलों को न तोंड़े।

स्वामी सनातन श्री

लखनऊ नगर से उत्तरायण सनातन आश्रम पड़ता है। अलीगंज चुंगी से लगभग डेढ़ किलोमीटर आगे। चुंगी से आगे बढ़ते ही शहर का शोर भरा वातावरण पीछे छूट जाता है। साथ ही आधुनिकता की उकता देने वाली नकली व्यावहारिकता। दूर–दूर तक फैले हरे–भरे खेत और बागीचे सड़क के दोनों ओर पक्तिबद्ध खड़े विशाल झुकते

पेड़ों का अलौकिक दृश्य, संन्यासी से मिलने की अभिलाषा तीव्रतर होती जाती है। फिर आश्रम का सामीप्य और पुष्प, लताओं और पेड़ों के समूहों का मौन स्वागत। शान्त, नीरवता में मूक प्रार्थना–पट। पुष्प और.....।

बरामदे में कदम रखते ही कुछ और पट नेत्रों को आकृष्ट करते हैं। आश्रम की लक्ष्मण रेखाओं का भान कराता एक पट तो दूसराः

"आप जब प्रणाम करते है अथवा चरण रज लेते हैं तो आपकी श्रद्धा आस्था एवं अपने संकोच के कारण यह संन्यासी आपको रोक नहीं पाता है।

अन्यथा, आपके चरणों की धूल ही इस संन्यासी का चन्दन तिलक है।

इच्छा हो, आप मन ही मन प्रणाम करें तथा ऐसा कुछ न करें जो संकोच का कारण हों।"

गुरुता की गरुता का भार ढोये कौन।
जन–जन की चरण रज को–
हम भाल तिलक जानते हैं।

– स्वामी सनातन श्री

आगन्तुक स्तब्ध पट को देखता रह जाता है, एक संन्यासी इतना अकिंचन। वह आगन्तुक का प्रणाम नहीं, चरण रज चाहता हैं तभी दूसरा पटटः

"मन्दिर, मस्जिद, गिरजा, गुरुद्वारे, मानव प्रेम के सबल सहारे।
सावधान।.धर्मद्रोही हत्यारे–बना न दे कसाई बाड़े। हर एक राह, नेक राह।।

– स्वामी सनातन श्री

प्राणीमात्र में ईश्वर को देखने की बात तो सारे सम्प्रदाय और गुरु कर्णधार करते आये हैं परन्तु क्या किसी ने....।

सद्‌ग्रन्थों में, अतीत कथाओं में, हमने पढ़ा एवं सुना था कि आश्रमों में पशु–पक्षी भी मनुष्यों की तरह बोलते हैं। श्री सनातन आश्रम में आज भी आपको ऐसा सुखद आश्चर्य होता है जहाँ कुत्ते बिल्लियाँ और जंगली पशु–पक्षी भी वाणी से वरद् होकर ईश्वर का नाम जप एवं ध्यान करें। जहाँ कुआरी बछियां भी स्तन से दूध गिरावें। जो अविश्वसनीय है तथा कथाओं में ही मिलता है उसका प्रत्यक्ष दर्शन कराते आश्रम के पशु, भक्त को स्तब्ध कर देते हैं। अतीत की कथाओं पर अनायास विश्वास हो उठता है अकिचंन, किसी से कोई इच्छा नहीं, फिर भी सारे भारत में मुफ्त बंटती किताबें नाना प्रादेशिक भाषाओं में, सब कुछ एक सपने सा लगता है फिर भी इतना सत्य और प्रत्यक्ष की प्रमाण का प्रश्न ही नहीं।

अतीत की मर्यादाओं का निर्वाह भी कितना स्पष्ट एवं पाखण्ड से रहित। आश्रम में प्रवेश पाते ही आगन्तुक की निगाहें सूचना पट पर टिक जाती है।

"अनन्त काल से सूर्य और पृथ्वी असीम प्यार की डोर में बंधे एक दूसरे के लिए तपते, और फलते फूलत हैं, परन्तु एक दूसरे से मिलते नहीं हैं। मिलन दोनों का सर्वनाश ही तो है।

संन्यासी और गृहस्थ का प्रेम सूर्य और पृथ्वी की भांति ही है : संन्यासी तपें जिसे गृहस्थ, सदगृहस्थ बन वासना और अज्ञान जलाकर सुखपूर्वक फलें फूलें। पृथ्वी और सूर्य की भांति अपनी सीमाओं और लक्ष्मण रेखाओं का सम्मान करते हुए।

आप हमारी और अपनी मर्यादा एवं दूरी का सम्मान करते हुए हम संन्यासियों को सेवा का अवसर दें। संकोच का कारण न बनें।

धन्य हैं वे लोग जो इस आश्रम में आते हैं। धन्य है यह आश्रम जो सनातन मूल्यों को अनायास और सहज ढंग से जनमानस में स्थापित करता चल रहा है। धन्य है स्वामी सनातन श्री, उनका स्नेह और आशीर्वाद जो सर्व सुलभ है, साक्षात आश्रम में, उसके कण–कण में और उनकी वाणी में जो कैसेट्स और **निष्काम पीठ प्रकाशन**, नई दिल्ली से प्रकाशित पुस्तकों में शाश्वत रूप से अक्षुण्ण रहेगा, सदा ही।

–रामचन्द्र गुप्त

प्रवक्ता, भौतिक विज्ञान, लखनऊ क्रिश्चियन कालेज, लखनऊ

गृहस्थ धर्म की पावन स्थली

गृहस्थ शब्द का अर्थ है,' गृहम् + स्थ् इति '। जो घर में टिका है।' कहां घर है आपका? आप उस स्थान का पता बता देंगे, जहां आप सपरिवार रहते हैं। परन्तु वह स्थान आपका अर्थात जीव का घर कैसे हो सकता है ?शरीर के न रहने पर जीव को उस स्थान को चाहे अनचाहे छोड़ना ही पड़ता है। उसके अपने ही उसे वहां पर देखना पसन्द नहीं करते। उसकी गया करवाते हैं। उसे वहां से भगाते हैं। फिर पूछता हूँ आपसे, कहां घर है आपका ? 'शरीर !' आप सोच कर उत्तर देते हैं। जीव का घर शरीर ही हो सकता है। परन्तु आत्मा के द्वारा देह के त्यागने पर शरीर भी जीव के लिये व्यर्थ हो जाता है। जीव को भी देह का त्याग करना पड़ता है।शरीर प्रकृति में विलीन हो जाता है। प्रश्न यथावत है। उत्तर नहीं मिला है। आपका गृह कहां है ? आप गृहस्थ कैसे होंगे?

'आत्मा'! जी हॉ ! आत्मा ही जीव अथवा जीवात्मा का घर है। जो आत्मस्थ

है, वही सही अर्थों में गृहस्थ है। बीबी बच्चों के परिवार से कोई गृहस्थ नहीं बनता। गुरूकुल शिक्षा में तो कदापि नहीं। जो आत्मस्थ है, वही गृहस्थ है। गायत्री मन्त्र में उसने स्वयं को आत्मा सूर्य को अर्पित किया है। आत्मा ही उसका सर्वस्व है, 'तत् सवितुर् वरेण्यम्'! ऐसे आत्मा रूपी सूर्य का मैं वरण करता हूँ। गृहस्थ तो वह अपनी आत्मा से हो ही चुका है, गुरूकुल में। अब फिर से कैसे गृहस्थ होगा ?

गुरूकुल ने उसे बताया जगत एक नाटयषाला है। यहां उसे आत्मा का निमित्त होकर अपना किरदार निभाना है। जिस प्रकार परमेष्वर जगत आत्मा के रूप में सचराचर का निर्माण, वहन, पालन एवं धारण करता है, उसी प्रकार तुम्हें भी आत्मा श्रीहरि के निमित्त के रूप में गृहस्थ धर्म को धारण करना होगा। तुम निमित्त गृहस्थ होगे।

'"क्या मैं अपने जनक आत्मा की भांति एक परिवार को, अपनी आत्मा का निमित्त हो, आत्मा की भांति ही अनासक्त, निकाम भाव से धारण कर सकता हूँ ? जैसे आत्मा सचराचर को बिना किसी संकीर्ण लिप्तता के धारण करता है, उसी प्रकार मुझे भी आत्म तत्व की प्राप्ति के लिये एक परिवार को धारण करने

की सामर्थ्य को पाना है, ना कि लिप्त हो जाना। जो लिप्त हो गया वह गृहस्थ कदापि नहीं हो सकता। उसकी स्थिति तो अन्धे धष्तराष्ट्र के जैसी है। जो गृहस्थी की दुहाई भी देता है तथा कुल के नाश का कारण भी बनता है। कुल नाशक गृहस्थ नहीं हो सकते।"

जो सन्तानों को जीवन के परम् लक्ष्य से हटाकर केवल अच्छी नौकरी, बड़िया वेतन, कुछ ऊपर की मोटी आमदनी का लक्ष्य दे रहे हैं, मनु उन्हें गृहस्थ कदापि नहीं मानते। मैं और मेरों की संकीर्ण भावना की कल्पना केवल पिशाच योनियों में ही सम्भव हो सकती है। मानव तो ईश्वर का पुत्र है। वह इतना घटिया कदापि नहीं हो सकता। मनु मानव योनियों का विधान है।

गुरूकुल से लौटते ब्रम्हचारी को इसी भावना से गृहस्थ धर्म में प्रवेश करना है। मनु ने स्वयंवर प्रथा का विधान किया है। कन्या को स्वयंवर में पति चयन का अधिकार है। यह अधिकार माता पिता अथवा किसी अन्य (वर) को नहीं है। नारी की भावना को पूरा आदर दिया गया है।

असुर संस्कृतियों ने मनु को कभी नहीं माना। वे इस व्यवस्था के विपरीत पुरूष को ही सारे अधिकार प्रदान करते हैं। नारी मात्रा भोग्या है। वह तो एक

मिट्टी के खेत के समान ही पुरूष की सम्पत्ति भर है। पुरूष जिस प्रकार चाहे, जैसा चाहे उसे भोग सकता है। नारी को उसकी प्रत्येक इच्छा, कामना अथवा आदेश धर्मपूर्वक मानने होंगे।

मनु ने नारी को पूर्ण अधिकार तथा सम्मान प्रदान किये हैं। बचपन में कुमारी कन्याओं की पूजा का विधान हमें मनु की व्यवस्थाओं में मिलता है। विवाह में पति चयन का अधिकार मात्रा कन्या को ही है। मन्दिर में पुरूष देवताओं के साथ देवियों को भी सर्वोच्च स्थान देकर मनु ने नारी के प्रति अपनी भावना का स्पष्ट दर्शन दिया है।

पूजा हवन तथा यज्ञादिक धार्मिक कृत्यों में नारी को पुरूष से पूर्व माना गया है। उसे पति के दाहिने (पूर्व, अग्रज के स्थान पर) बैठने का विधान किया गया है। पति को वानप्रस्थ अथवा सन्यास तबतक नहीं मिल सकता जबतक पत्नी उसे अनुमति सबके सामने आकर स्वेच्छा से प्रदान न करे। उसकी अनुमति के बिना वह ऐसा नहीं कर सकता है। जबकि असुर धर्म में पुरूष को नितान्त स्वेच्छाचारी बनाया गया है। नारी को धर्म अथवा धर्मस्थान पर जाने के अधि ।कार पर भी अंकुश लगाये गये हैं।

विवाह भी जगतलीला का नाटक है। इसे भी निमित्त धर्म की संज्ञा प्रदान की गयी है। विवाह मण्डप में विवाह हेतु आया वर वेद की ऋचाओं में नववधु से कहता है ' सुनो ! न तो तुम पत्नी हो तथा ना ही मैं पति। उत्पत्ति के रहस्य तुम नहीं जानती और ना ही मुझे मालूम हैं। आत्मा ही सम्पूर्ण सचराचर में उत्पत्ति कर्त्ता है। हमें अपने ही शरीर का अंग बनाना नहीं आता।

सम्पूर्ण सचराचर एक नाटयशाला भर है। तुम जीव रूप पत्नी का अभिनय करोगी और मैं आत्मा रूप पति का अभिनय करूंगा। इसलिये तुम अपना गाण्डीव (यज्ञोपवीत, जिसे दुर्गा यज्ञोपवीत कहते हैं।) मुझे धारण कराओ तथा मेरे ऐश्वर्य की स्वामिनी बनो। मेरी चल अचल सम्पत्ति पर पहला अधिकार तुम्हारा होगा, उपरान्त मेरा होगा। हमारी सन्तान पर भी पहला अधिकार तुम्हारा होगा, उपरान्त मेरा होगा। भौतिक जीवन में मैं तुम्हें सदा बांये रखूंगा। भौतिक जीवन ही संग्राम है जिसे मुझे यज्ञोपवीत रूपी गाण्डीव से लड़ना है। मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा। तुम्हें सदा बायें रखूंगा, तुम्हारा कवच बनूंगा। परन्तु उपलब्धि के क्षणों में तुम सदा मेरे से पूर्व, मेरे दाहिने विराजोगी। धर्म एवं मोक्ष पर पहला अधिकार तुम्हारा होगा। अब तुम चाहो तो अपना समर्पण मुझे प्रदान करो। पिता

द्वारा प्रदान किये गये वस्त्राभूषणों का परित्याग कर मेरे द्वारा लाये गये वस्त्राभूषणों को धारण कर पुनः यज्ञ मण्डप में विवाह हेतु पधारो।'

सप्त विषयों से उपराम हो आत्मा के निमित्त हम आत्म तत्व की प्राप्ति के लिये दाम्पत्य धर्म को धारण करेंगे। यह विवाह हमारे सत्य विवाह रूपी नाटक का पूर्वाभ्यास भर है। सत्य विवाह तो तब होगा जब जीव की ग्रन्थि सदा सदा के लिये आत्मा से बंध कर एक हो जायेगी। हम धर्मपूवर्क शास्त्र सम्मत इस दाम्पत्य को धारण करें। यदि पूर्वाभ्यास ही अपवित्र हो गया तो हमें सत्य विवाह के मंच पर जाने की अनुमति भी नहीं मिलेगी। तबतो सबकुछ नष्ट हो जावेगा। हमें प्रायश्चित की योनियों में भटकना पड़ेगा। इसलिये धर्मपूर्वक हम अन्तिम श्रद्धा एवं समर्पित भक्ति पूर्वक इसे धारण करें। हमसे कभी भी अनजाने में भी त्रुटि न हो।

गृहस्थ धर्म जहां एक ओर वानप्रस्थ धर्म के पूर्व की तैयारी है, छोटे पूर्वाभ्यास में उत्तीर्ण होकर, बड़े पूर्वाभ्यास में प्रवेश की योग्यता को प्राप्त होना है, वहीं इसका दूसरा अति महत्त्वपूर्ण कारण भी है। उसे भी जानना होगा। जिस प्रकार एक दम्पत्ति ने निमित्त होकर मुझे शरीर प्रदान किया, उसी प्रकार मेरा भी धर्म

है कि भविष्य में आने वाले जीवात्मा के लिये मैं भी निमित्त बनकर आत्मा का नूतन सृष्टी में सहयोग करूं। निमित्त माता पिता बनू। बनाने वाला तो मात्र आत्मा ही है। यह मेरा परम् निमित्त कर्त्तव्य है। मुझपर आत्मा तथा माता प्रकृति का कर्ज भी है।

इन सारी व्यवस्था कथाओं से एक बात निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो जानी चाहिये कि मेरा जीवन का उद्देश्य जो दिख रहा है उससे हट कर कुछ और ही है। मनु इस जन्म जीवन को किसी अन्य उद्देश्य के हित में निमित्त भर ही मान रहा है। पाना कुछ और है तथा दिखता कुछ और है। वह नहीं चाहता कि हम धरती से ही चिपक कर रह जायें। वह हमारी मंजिल कहीं और देख रहा है। वह हमें किसी भी प्रकार से भटकने नहीं देना चाहता। क्यों ? उसे क्यों लगता है कि हम किसी दूसरी सत्ता की बहुमूल्य धरोहर हैं, हम किसी अजनवी स्थान पर किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उतारे गये हैं तथा हमे वहीं लौटना है ? क्या मनु का ऐसा सोचना अनुचित है?

मनु के साथ ही प्रकृति भी तो वही सोच रही है तथा आत्मा भी उसका अनुमोदन भर ही कर रहा है। यदि ऐसा नहीं तो मृत्यु की अनिवार्यता क्यों? मृत्यु

की सीमा क्यों ? जीवात्मा को धरती पर रहने के लिये षरीर की अनिवार्यता क्यों ? मुझे सबकुछ छोड़ कर मरना क्यों पड़ेगा ? लौटने पर मेरा पिछला ज्ञान, पहचान और उपलब्धियां क्यों नहीं मिलती ? मेरे साथ फांसी की सजा पाये अपराधी सा व्यवहार क्यों ? यह वर्णाश्रम धर्म की अनिवार्यता क्यों ? क्या मनु सचमुच मुझे क्षीरसागर का मूल वासी ही मानते हैं ? जीवन पहेली का मूल सूत्र मुझे क्षीरसागर में ही मिलेगा ?

गृहस्थ धर्म एक अति पावन पूजा स्थली है। एक पवित्रतम आश्रम है। सार्थक जीवन की आधारशिला है। आत्मा की भांति ही मुझे कुछ लोगों के परिवार को आत्मवत पविृत्रतम भाव से धारण करना है। विषयों, आसक्तियों, लिप्साओं आदि के द्वारा इस पवित्रतम तप स्थली को मैला करने का अधिकार हममें किसी को नहीं है। इस तपस्थली से एक द्वार खुलता है वानप्रस्थ की ओर। यदि यह द्वार नहीं खुला तो सम्पूर्ण जीवन ही व्यर्थ हो जायेगा। असंख्यों जन्म भटक जावेंगे।

गृहस्थ आश्रम का समय भी गुरूकुल की भांति सीमित है। यह कोई ऐशगाह अथवा तफरीह गाह नहीं है। समय की सीमा के भीतर मुझे अगली कक्षा में प्रवेश लेना होगा। जो चूक जायेगा, सबकुछ गंवा देगा। मनु, प्रकृति अथवा पुरूष

(आत्मा) हमें किसी भी प्रकार की छूट अथवा सांत्वना नहीं प्रदान करेंगे। हम अपने तर्कों से स्वयं को बहला अथवा मूर्ख तो बना सकते हैं, परन्तु समय (मनु), प्रकृति अथवा आत्मा को मना लेना सम्भव कदापि नहीं है।

चिड़िया का बच्चा अण्डे के खोल में कब तक रहता है ? जबतक उसके पंख बन नहीं पाते। उसके बाद भी क्या वह अण्डे के खोल में रहना चाहेगा ? कदापि नहीं ! भले उसने अभी जन्म पाया है। उसे विशेष समझ अथवा ज्ञान भी नहीं है। परन्तु फिर भी अपने अतीन्द्रिय ज्ञान से वह जानता है कि उसे तुरन्त खोल से उड़ जाना होगा नहीं तो उसे बिल्ली अथवा कोई हिंसक जीव चट कर जायेगा।

हम क्यों नही गृहस्थी के खोल से बाहर निकल पाये ? पंख जो नहीं बने थे। हम भले अपने को झूठे तर्कों से बहलाते रहें, समय की बिल्ली नहीं बहलने वाली, वह निश्चय ही हमें चट कर जायेगी। हमारी हताशा है कि पंख ही नहीं बने थे। उड़ कर जाते कहाँ ? इसीलिये जान कर भी अनजान बने रहे। सदा समय की बिल्ली ही हमें खाती रही। डींगों का असर बिल्ली पर नहीं होता।

गृहस्थ आश्रम दान, धर्म, सेवा, पूजा, जप तप की अति पावन स्थली है।

परमेश्वर को भी लीलावतार में इसकी ही शरण लेनी होती है। जिसने इस पावन स्थली को लोभ मेरा तेरा की आसक्तियों से मैला कर दिया, उसने इस जन्म के साथ ही असंख्य जन्मों का तप खो दिया। मनु की व्यवस्थाओं एवं नियमों में देवताओं को भी छूट नहीं है। मनु की व्यवस्था में कोई भी मासूम नहीं होता। न्याय की तुला पर सब समान हैं। जिसने वक्त (मनु) को नहीं जाना, जो क़ुदरत के अक्षरों को नहीं पढ़ पाया, जिसने अपनी आत्मा को ही धोखा देना चाहा, उसके साथ यथा न्याय तो होगा ही।

आपका बेटा है। आपने उसे नये स्कूल में दाखिल कराया है। बच्चा पढ़ कर घर लौटा है। आप पूछते हैं कि उसे स्कूल कैसा लगा। वह उत्तर देता है कि उसे नया स्कूल तथा विशेषकर उसका क्लासरूम बेहद पसन्द आया है। उसका मन करता है कि वह क्लासरूम में सदा रहे। आप सुनकर प्रसन्न हो जाते हैं। फिर आपने पूछा कि क्या उसने पढ़ाई भी की ?

बालक का उत्तर नकारात्मक है। उसने पढ़ाई नहीं की है। उसके उत्तर से आप अप्रसन्न हो उठते हैं। पाठशाला और कक्षा भी इसे बहुत पसन्द है। फिर इसने पढ़ाई क्यों नहीं की ? आपके पूछने पर आपका बेटा आपको बताता है

कि उसने डर के कारण पढ़ना नहीं चाहा है। कैसा डर? आपके पूछने पर उसका उत्तर मिलता है कि उसने इस डर के कारण पढ़ना उचित नहीं समझा कि कहीं वह कक्षा में पास न हो जाये। पास हो गया तो क्लासरूम न छूट जायेगी ? उसे क्लासरूम से बहुत लगाव है। वह उसी क्लासरूम में ही सदा बने रहना चाहता है। आपको कैसा लगेगा ?

आप ने भी जीवन को पाठशाला नहीं मानना चाहा है। आपको भी पाठयक्रम से नहीं क्लासरूम से प्यार है। इसीलिये तो आप जीवन की दूसरी कक्षा, गृहस्थ से ही चिपक कर रह जाना चाहते हैं। अगली क्लास वानप्रस्थ को पास होकर प्राप्त होने में आपकी कोई दिलचस्पी नहीं है। भले मृत्यु मुझे स्कूल से बाहर कर दे, पास होकर मैं अगली क्लास न जाता।

वानप्रस्थ धर्म

एक राह ऐसी भी है जिसे सबने बिसरा दिया है। इस भूली बिसरी राह पर बहुत चहल पहल रहती थी कभी। इस राह से गुजरें हैं महान पूर्वज हमारे। इस राह के प्रत्येक कण को युगों और सहस्त्राब्दियों ने चूमा है। इसकी धूल में लोटकर मानव धन्य हुआ है। आज यह राह वीरान है। किसी के बड़ते कदमों की आहट अब सुनायी नहीं देती है। एक गहरा, बहुत गहरा सन्नाटा छाया हुआ है, हर ओर !

मनु की जीवन रूपी पाठशाला की तीसरी कक्षा है यह ! जीवन की अवस्था के साथ बंधी हैं पाठशाला की कक्षायें। मेरा भोला बचपन ही पहली कक्षा है। गुरूकुल में मेरा प्रवेश मुझें पाठशाला में ले आया है। 11 से 13 वर्ष की आयु में प्रवेश पाता हूँ। लगभग 25 वर्ष की आयु में गुरूकुल से उत्तीर्ण होकर जीवन की नयी कक्षा में प्रवेश हेतु लौट पड़ता हूँ माया संसार की ओर ! गृहस्थ धर्म में प्रवेश ही मेरा अगली कक्षा में प्रवेश है। यहीं से मैं आयु की भी अगली कक्षा में प्रवेश पाता हूँ। युवावस्था में मेरा प्रवेश भी इसी कक्षा के साथ ही होता है। प्रौढ़ावस्था के साथ ही मुझे उत्तीर्ण होकर वानप्रस्थ की अगली कक्षा में प्रवेश

करना होगा। यह मेरी आयु की तीसरी अवस्था है तथा जीवन पाठशाला की तीसरी क्लास है। वृद्धावस्था आयु की चौथी अवस्था होगी तथा पाठशाला की चौथी क्लास अर्थात संन्यास। जब समय ने आयु के साथ ही जीवन की अवस्थायें बदली, तो क्या आयु के साथ मुझे भी अगली कक्षाओं में उत्तीर्ण होकर जाना ही सही धर्म नहीं है ? क्लासरूम से चिपक कर रह जाने में क्या औचित्य है ?

यहां एक सन्देह मैं आपका दूर कर देना चाहूंगा। बाल विवाह कदापि सनातन धर्म की देन नहीं हैं। गुरूकुल से बालक 25 वर्ष की आयु में ही लौट पाता था। उस अवस्था में बाल विवाह का प्रश्न ही नहीं उठता। आपके सभी धर्मग्रन्थों में 25 वर्श का अनिवार्य ब्रम्हचर्य की व्यवस्था है। इससे भी बालविवाह की प्रथा का निर्मूल होना स्वयंसिद्ध है। तीसरा कारण है स्वयंवर प्रथा ! जबतक कन्या परिपक्व अवस्था में नहीं होगी वह भारी भीड़ में पति का चयन कैसे करेगी ? इससे भी बालविवाह की भ्रांति निर्मूल सिद्ध होती है। फिर यह प्रथा आरम्भ कब और कैसे हुई ?

मध्य युगीन काल में भारत को दासता के बीहड़ अन्तरालों को घुट कर जीना

पड़ा। विदेशी संस्कृति में औरत को कोई सम्मानजनक पद प्राप्त नहीं था। विदेशी कहीं कन्या को उठाकर हरम न कर लें, इस भय ने इस प्रथा को जन्म दिया था। धर्म, संस्कृति अथवा कछुवे पर जब भी बाहय प्रहार का भय होता है, तो वे स्वभावतः अंग समेटते ही हैं।

गृहस्थ धर्म की पावन तपस्थली से दो रास्ते दो विपरीत दिशाओं की ओर जाते हैं। अथवा दो अवस्थायें भी आप कह सकते हैं। पास अर्थात उत्तीर्ण अथवा फेल अथवा अनुत्तीर्ण। उत्तीर्ण होने की अवस्था में वानप्रस्थ धर्म को प्राप्त करता सन्यास की ओर अग्रसर होगा, इसे शुक्ल मार्ग कहा है। इसका देव (आत्मा) यान है। इसमें पीछे आने वाली गति नहीं है। दूसरा मार्ग सकाम मार्ग है, जिसका पितृ (लकड़ियां वनस्पतियां, आसक्तियां आदि) यान है। इसमें बारम्बार पीछे आने वाली गति है। इसमें जीव अथवा जीवात्मा को निरन्तर तबतक भटकते रहना पड़ेगा जबतक वह पुनः मानव योनि प्राप्त कर उत्तीर्ण होता देवयान से ही गमन करे। मनु हमें कहीं छूट नहीं देगा। प्रकृति के नियम और ज्योतिर्वेद भी मनु का ही अनुमोदन करेंगे। मनु हमें हमारे उद्‌गम के प्रति सदा जागरूक रखना चाहेगा। अंश और अंशी को इतने दूर नहीं होने देगा कि

वे एक दूसरे को भुलाकर सदा के लिये पहचान ही खो बैठें। महा पतन की ध
ूल में ही खो जायें। फिर कभी उद्धार संभव ही न हो। थोड़ा रूक कर विचार करें कि मनु को भुला कर हमने इतने समय में क्या खोया है तथा क्या पाया है। कहीं बहुत देर न हो जाये। कहीं अन्धेरे और अधिक गहरे न हो जायें।

वानप्रस्थ धर्म का यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिये कि अब आपको जंगल में ही बस जाना होगा। जंगल में तो डाकू भी बसते है। उन्हें कोई वानप्रस्थी नही कहता। जीवन रूपी पाठशाला का अगला चरण अथवा अगली कक्षा का नाम है – वानप्रस्थ धर्म ! इन्ही को वैरागी भी कहने की परम्परा है।

हम जरूर रूक जाते एक ही क्लास में यदि समय हमारें रूकने का अनुमोदन कर देता। परन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ। हर बार हमने माया बटोरी और चाहा कि हम इसका सदा भोग करते रहें, परन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ। हर बार समय ने हमारी इच्छा को एक ठोकर से नकार दिया और भेज दिया मृत्यु की गोद में। सबकुछ लुट गया ऐसे जैसे वह कभी हमारा न था। हम सदा गलत साबित हुए।

मनु है काल, समय, वक्त ! और ज्योतिर्वेद है जीवन उत्पत्ति की एक कभी

न खत्म होने वाली सत्य कथा! चलें इनकी व्याख्याओं में और खोजें राह अपनी अपनी ! अज्ञान की शूद्रता को ओड़कर हम पैदा हुए थे। ज्ञानार्जन की कक्षा में, गुरूकुल में हम द्विज धर्म को प्राप्त हो गये। ज्ञानार्जन ही मूल रूप से धनार्जन हैं। जो ज्ञान रूपी धन से धनी है, वही धनवान है। धन का अर्जन करने की मनोवृति ही वैष्य वृति कहलाती है। सबकुछ यहां पर गुण कर्म विभागसा है। श्रीमद्‌भगवतगीता में भगवान श्री कृशण ने ऐसा ही कहा है। हम ज्ञानार्जन करते वैश्य कहलाये।

गुरूकुल से लौटे और गृहस्थ धर्म को प्राप्त हुए। गृहस्थ धर्म ही क्षत्रिय धर्म है। यज्ञोपवीत के गाण्डीव से, गुरूकुल के अमृत ज्ञान रूपी अस्त्रों द्वारा; विषय, आसक्तियों और भौतिकताओं के सम्पूर्ण भ्रमों को नष्ट निर्मूल करते, जीवन को सार्थक आत्मा की राह देना। जीवन जयी होना है हमें। हम हारकर नहीं जायेंगे। एक योद्धा की भांति जीवन संग्राम में विजयश्री लेकर ही उर्ध्वगामी होंगें। अधोगामी होना हमें स्वीकार नहीं हैं। हम मनु और ज्योतिर्वेद के परम अनुयायी हैं। इससे हटकर कोई दूसरा विकल्प किसी के पास नहीं है। यदि कुछ है तो स्वयं को दिया गया धोखा भर है। कल मृत्यु उसपर 'झूठ

है' की मुहर लगा देगी। इसलिये गृहस्थ धर्म को धर्म पूर्वक जीते हुए अगली कक्षा में अवश्य प्रवेश लेना है। रूक गये तो अपराधी होंगे। पितृ यान से चाण्डाल के घर की आग लेकर जाना होगा। निकल गये जो पास होकर, तो क्षत्रिय धर्म को जीतकर वानप्रस्थ धर्म में प्रवेश कर ब्राम्हण कहलावेंगे। गुण और कर्म के विभाग से ब्राम्हण धर्म को प्राप्त होंगे।

अतीत के युगों में प्रत्येक गृहस्थ नियम पूर्वक वानप्रस्थ धर्म को प्राप्त होता था। इसके लिये उसे एक यज्ञ करना पड़ता था इस यज्ञ का नाम राजसूय यज्ञ है। 'राज' षब्द का अर्थ है – ज्योति। एवं 'सूय' षब्द का अर्थ है उत्पन्न करना। ज्योतियों को उत्पन्न करने वाला यज्ञ। कहीं कहीं इसका नाम गोमेध यज्ञ, ऐसा भी आया है। 'गो' का अर्थ प्रकाश है। 'मेध' का अर्थ है व्याप्त होना। ज्योतियों में व्याप्त होना। आत्मज्योतियों की राह जाना। वानप्रस्थ धर्म में प्रवेष करना।

समाज के सभी वर्गों के लोग अनिवार्य रूप से इस मार्ग का अनुसरण करते थे। जो नहीं जा पाता था उसे समाज में हेय दृष्टी से देखा जाता था। एक हारा हुआ खिलाड़ी ! राजा से लेकर समाज के किसी भी वर्ग के व्यक्ति का वानप्रस्थ प्रवेश का कार्यक्रम एक व्यापक उत्सव के रूप में मनाया जाता था। महाभारत

लीला महाकाव्य में पाण्डवों ने भी राजसूय यज्ञ किया था। उसमें श्रीकृष्ण की अग्रपूजा हुई थी। लीला कथाओं में लीलात्मक ढंग से समाज में प्रचिलित परम्पराओं का चित्रण होता है। श्रीराम लीला कथा में भी राजसूय तथा उपरान्त में अश्वमेध यज्ञ की चर्चा आयी है। एक संक्षिप्त झांकी का अवलोकन करेंगे।

राजेन्द्र ने राजसूय यज्ञ की घोशणा कर दी। उद्देश्य ? राजन, राज्य को उसके उत्तराधिकारियों के नियन्त्रण में छोड़कर स्वयं जीवन की अगली कक्षा में प्रवेश कर रहे हैं। अब वे श्रीहरि के निमित्त होकर ही राज्य को परोक्ष रूप से धारण करेंगे। राज्य का सम्पूर्ण भार अब भावी उत्तराधिकारियों के कन्धों पर होगा। राजन स्वयं 12 वर्ष का वानप्रस्थ ग्रहण करते, आत्म चिन्तन, सत्संग, तप एवं साधना तथा तपस्या की राह पर गम्भीर होंगे। वैराग्य, तप तथा अनन्त की राह में युद्ध हेतु सन्नद होता एक जीवन जयी महायोद्धा ! असहाय कबूतर की भांति दीन हताश होकर मृत्यु का दुखद वरण ! अथवा जीवन जयी योद्धा बन मुस्कराते हुए उसका अनन्त की यात्रा के लिये स्वागत ! मृत्यु को देह का दान कर अनन्त की राह लेता एक महावीर ! जैसे आये, जीवन के खेल खेले, हारे और जीते, समय के साथ खेल के मैदान से बाहर निकले, लौट अपने घर गये। क्लब से

खेलने का सामान (शरीर) लिया था खेलने के लिये। लौटाया और मुस्करा कर चल दिये। यही है कहानी हमारे नायक की। राज सम्मान ऐश्वर्य सब खेल ही तो हैं अब घर लौटने की तैयारी भी करनी है। सम्मान के साथ लौटना अथवा धकियाये जाने पर अपमानित होकर निकलना ? आपको क्या अच्छा लगेगा ?

12 वर्ष के वानप्रस्थ के उपरान्त एक वर्ष का अज्ञातवास लेंगे राजन। क्यों ? दुनिया को जान लेना इतना मुश्किल नहीं है। स्वयं को जान पाना अति दुष्कर है। केवल ग्रन्थ पढ़ लेने से, पूजा, पाठ, माला, जप तप से व्यक्ति अपने प्रति नितान्त भ्रमित हो सकता है। जो वह है ही नहीं, भ्रमवश अपने को वही मान सकता है। 12 वर्ष के वानप्रस्थ में निसन्देह राजन ने निष्ठा एवं धर्म पूर्वक ज्ञान की प्राप्ति तप एवं साधना की। नियम पूर्वक जीवन लक्ष्य के लिये स्वयं को तैयार किया है। फिर एक वर्ष का अज्ञातवास क्यों ?

क्या वे सचमुच स्वयं को तैयार कर पाये हैं ? क्या वे सभी प्रकार की आसक्तियों को निर्मूल कर पाये हैं ? क्या उनकी चेतना की गहराईयों में आत्माद्वैत का भाव अटल हो चुका है ? कोई भी इच्छा अथवा अतृप्ति उन्हें क्षणिक रूप से भी भटका तो नहीं रही ? वे एक ऐसी राह पर जा रहे हैं जहां

मार्ग में पड़ने वाले प्रत्येक पुल को पार करने के उपरान्त यात्री खुद ही जला देता है, जिससे वह कभी भी लौटने का विचार ही न मन में आने दे। अब नही लौटेगा कभी, अनन्त की राह पर बढ़ते रहना ही उसकी नियति है। जो उसने स्वयं स्वेच्छा से चुनी है। अन्यथा भी वह वहां रह नहीं सकता था। मृत्यु रूपी बिल्ली उसे पर कटे घायल कबूतर के जैसा नोच कर छितरा देती। एक बुझदिल कायर मौत ! मौत जब एक अनिवार्य सत्य है। सबकुछ भौतिक छिनना अटल सत्य है। ज्ञान विज्ञान पद प्रतिष्ठा निश्चय ही साथ छोड़ देंगे। उसे एक दयनीय मृत्यु अवस्था को वरण करना ही होगा। तब क्यों न वह एक योद्धा के वर्चस्व को प्राप्त होंता, जिन्हें छूटना है कल, उन्हें स्वयं मुस्करा कर मनसा वाचा कर्मण परित्याग करता अनन्त की राह अपने घर की ओर चल दे। उसे स्वयं को सही मायनो में तौलना है। इसीलिये वह एक वर्ष का अज्ञातवास लेगा। स्वयं को एक अजनवी प्रदेश ले जाकर इच्छारहित होकर, प्राणीमात्र की समर्पित सेवा करेगा, एक आत्मा के सहारे जीयेगा। अपना इम्तहान वह स्वयं लेगा। जब आश्वस्त हो जायेगा तो 18 दिन का महाभारत, यज्ञ की अग्नियों के सम्मुख लड़ता, पुनः यज्ञों के पूर्ण होने के उपरान्त, जल की धाराओं में प्रवेश करेगा। सारा अतीत

धाराओं में बह जायेगा। धाराओं के उस पार एक संन्यासी प्रकट होगा। जो केवल वर्तमान ही जीता है, अतीत लहरों में खो गया है। एको ब्रम्ह द्वितीयोनास्ति ! न इच्छा है, न चाह है ! बस एक अनन्त की राह है।

मनु और ज्यातिर्वेद की राह से हटकर मानव ने क्या खोया और क्या पाया है ? जब बूढ़े लोगों के जीवन की कल्पना करता हूँ तो कसाई बाड़े में बन्द बकरों की आर्त अनहद चीख मेरे कानों में गूंज जाती है, जिन्हें थोड़ी देर बाद कसाई के हाथों कटना पड़ेगा। आज समाज में लाचार बूढ़े लोगों की पीढ़ाभरी एवं दयनीय हताशा से कौन अनभिज्ञ है। वृद्धावस्था के नाम पर चलते आश्रमों की चर्चा से हम सब परिचित हैं। परनुचे कबूतरों जैसे ये बुड्ढे उन आश्रमो में कितने सुखी एवं आशवस्त है ? क्या वे मरेंगे नहीं ? मनु की राह में, आत्मा की इस राह पर उनका बुढ़ापा अधिक सुखी आशवस्त, आत्मसुख से वरद एवं मृत्यु के भय से वंचित, क्या यह विचार इतना बुरा था कि समाज इसे भुला दे ? आज पुरानी पीढ़ी को शिकायत है कि नई पीढ़ी उसका आदर नहीं करती, उसे सम्मान के साथ लादने को तैयार नहीं। क्या मनु के काल की पीढ़ी भी इसी पीड़ा को जीती थी ? जी नहीं ! उस काल पुरानी पीढ़ी एक सुव्यवस्थित जीवन

शैली में किसी पर लदने को तैयार ही नहीं होती थी। उससे पूर्व ही स्वाभिमानपूर्वक वानप्रस्थ और समय के साथ संन्यास में प्रवेश कर, अनन्त की राह का अमृत सुख लेने चल देती थी। किसी की दया और भीख का प्रश्न ही नहीं उठता था। वे सब स्वाभिमान पूर्वक जीने के आदी थे। उन्हें मनु ही भाता था।

वानप्रस्थ धर्म को प्राप्त हो गये लोग निष्काम भाव से सेवा में लगते थे। गुरूकुल में छात्रों को निष्काम भाव से आचार्य बन कर उनके जीवन को अपने व्यवहारिक ज्ञान से अमृतमय बनाना। समाज को सुशिक्षित करना, मन्दिरों के माध्यम से सत्संग तथा सेवाओं द्वारा समाज की अदभुत सेवा। समाज को गलत दिशा तथा कुरीतियों से बचाना, समाज को आत्मा की राह के प्रति सचेत करते रहना, समाज की सोच को मानवीय मूल्यों के प्रति सचेत करते रहना, प्राणी मात्र की सेवा के लिये समाज को जागरूक रखना तथा स्वयं भी सेवाओं के उन्नत आदर्श समाज के सामने रखते रहना, उत्सव, त्योहार, पूजा व्रतादि के प्रति समाज को जगाये रखना आदि कार्य वानप्रस्थ धर्म की शोभा बनते थे। वे प्रत्येक घर के सम्मानित सदस्य हो जाते थे। एक घर क्या छोड़ा हर घर उनका हो गया। हर घर में उनकी प्रतीक्षा होती। बच्चे उनकी कथाओं में अमृत ज्ञान पीते

तो युवा उनके अनुभवों तथा दिशा निर्देशों से जीवन को सुखद बनाते। उन्हें पाकर समाज धन्य होता, न कि वे किसी से दया की भीख मांगते।

मनु की इन व्यवस्थाओं में मनु की एक तड़प भी छिपी हुई है। मनु जीवात्माओं को उनकी राह से भटकने नहीं देना चाहते। वे क्षीरसागर की धरोहर हैं धरा पर ! उन्हें अपने मूल स्वरूप को खोने नहीं देना है। उन्हें अपने मूल स्थान तकं पहुंचाना ही मनु की तड़प है। इसीलिये उसकी सम्पूर्ण व्यवस्थाओं के पृष्ठ में क्षीरसागर का भाव प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में विद्यमान रहता है।

व्यवहारिक एवं मनोविज्ञान की दृष्टी से भी यदि हम विचार करें तो मनु की व्यवस्था विलक्षण रूप से आश्चर्यजनक है। यौन आकर्षण स्थायी नहीं रहता जब तक उसमें अन्य भाव तथा प्रतिबद्धतायें भी उसमें प्रभावक रूप से न जुड़ी हुई हों। विवाह पर समाज, कानून, न्याय, प्रतिष्ठा, सन्तान का भविष्य, लोक लाज आदि परोक्ष प्रतिबद्धताओं का व्यापक दबाव न हो तो कितने जोड़े केवल यौन आकर्षण से बन्धे रह सकते हैं ? मनु ने विकल्प के रूप में आत्मा का पवित्र पूज्य एवं वन्दनीय आकर्षण जीवन में लाकर मनुष्य के जीवन को लक्ष्य परक

एवं सुखद करना चाहा है। यौनाकर्षण को आत्मा की प्राप्ति से संयुक्त कर संबन्धों को वन्दनीय अमरता प्रदान करने का आलौकिक प्रयास किया है। यह अदभुत आश्चर्यजनक एवं वन्दनीय है। भौतिक एवं इन्द्रियोचित सम्बन्धों के क्षणिक आकर्षण में आत्मा के अमर संगीत का समावेश कर सम्बन्धों को चिरन्तन बनाने के प्रयास को भला कौन नकार सकता है। ऐसे ही प्रयास अतीत के युगों में लगभग सभी सम्प्रदायों अथवा धर्मों में भी हुए हैं।

क्रिश्चियन समाज में विवाह को धार्मिकता से जोड़ने के लिये चर्च में ही विवाह करने की परम्परा ने जन्म पाया। यह एक अनिवार्य नियम बनाया गया, जो आज भी कायम है। जो विवाह चर्च में होता है वही जायज है। जो विवाह चर्च में नहीं होता वह नाजायज है तथा ऐसे विवाह से उत्पन्न संतानों को ही इन्डियन (नाजायज, अवैद्य अथवा गैरकानूनी) कहते हैं। जिन देशों में लोग चर्च में शादी नहीं करते उन्हें भी इसी नाम से पुकारा जाने लगा। आज भी इंग्लैंड के कानून में इन्डियन एक गन्दी गाली है, असंवैधानिक अपशब्द है तथा दण्डनीय अपराध है। इन्डिया, इन्डोनेशिया, वैस्टइन्डीज, न्युइन्डीज, मिनीइन्डीज आदि देश हैं। इन देशों में सिन्धु के नामधारी नदियां भी नहीं हैं, जैसी भ्रान्तियां

यहां के विद्वानों ने लोगों को गुमराह करने के लिये फैला रखीं हैं।

इसी प्रकार मुस्लिम समाज में भी विवाह को धर्म के साथ जोड़ा गया है। विवाह को उमर देने के लिये धर्म की निरन्तर खुराक की जरूरत को इस्लाम में भी माना गया है। एक प्रकार से सभी युगों में लगभग सभी सन्त, मनीषी एवं विचारक इस सत्य से सदा एकमत रहे हैं कि भौतिकता एवं आसक्तियों के छिछले जल में समाज जैसी बड़ी मछली का जीवित रह पाना नितान्त असंभव है। उसे आत्मा की अनन्त आस्था का अथाह सागर देना ही होगा। धर्म को शिक्षा का व्यापक अधिकार गुरूकुल के रूप में प्रदान कर मनुष्य के जीवन को सरल, सरस, मानवीयता से परिपूर्ण कर गगन की ऊचांईयों के लक्ष्य साधने के अनुभूत प्रयास किये गये हैं।

समय के साथ सामाजिक व्यवस्थाओं ने धर्म से किनारा करना प्रारम्भ कर दिया। शिक्षा एवं समाज पर भौतिकताओं का वर्चस्व होने लगा। धर्म को बुर्जुआ फूहड़ करार देकर विस्मृत की समाधियों में दफन करने का नया फैशन चल निकला। उसके परिणाम अब हमारे सामने हैं। नये अनुसन्धानों ने नित नयी समस्याओं को जन्मना प्रारम्भ कर दिया। उनके समाधान करने के प्रयास भी

किये गये। समय के साथ प्रत्येक समाधान एक नयी भयंकर समस्या बनकर सामने आ खड़ा हुआ। अब हाल यह है कि समस्याओं को नियति के रूप में समाज पशुवत ढोने के लिये विवश है।

पाश्चात्य देशों में सामाजिक समरसता एवं पारिवारिक सौहार्द के हित में नये कानून एक नयी घुटन बनकर रह गये हैं। बच्चा यदि पुलिस को फोन कर दे तो पुलिस आकर माता पिता को हत्थकड़ी लगाकर ले जाती है। बच्चों को उनपर हो रहे अत्याचार को रोकने के लिये समाधान में के रूप में ये कानून अब उस समाज के सम्पूर्ण विनाश का कारण बनते जा रहे हैं। नई पीढ़ी अब सड़कों पर ही शिक्षित होना चाहती है। उसे न तो किसी का भय है और न ही किसी से लगाव है। बलात्कार हत्या, लूटपाट, नशा एवं उद्दण्डता, निरंकुश स्चच्छन्द जीवन ही पाठयक्रम बनकर रह गये हैं। समाधान ही भयावह समस्या बन गये हैं।

यौनाकर्षण किसी को भी लम्बे समय तक बान्ध कर रख नहीं सकता। अल्पजयी एवं अस्थिर मायावी होने के कारण इसके नित नये बदलते रूप सम्बन्धों की मिठास और आपसी विश्वास को सहज ही मिटा कर रख देते हैं।

साधुता और मानवीयता इससे टकराते ही हवा हो जाती है। फिर शुरू होता है घृणा, वैमनस्य, प्रतिशोध, अविश्वास एवं हिंसा का नया गृहस्थ जीवन। आई लव यू का नया संस्करण बन जाता है आई हेट यू!

पाश्चात्य जगत ने इसे भी थाने और कानून की व्यवस्था में लाकर समाधान करना चाहा। औरत को कमजोर मानकर उसे पुलिस और कानून का संरक्षण देने के समाधान से समस्यायें अधिक विकट हो उठी हैं। थानेदार और वकील अब मिंया और बीबी के बीच में सोते हैं, सुरक्षा कारणों से। युवक शादी के नाम से ही चिढ़ने लगे हैं। चर्च को हटाकर नये समाधानों के नीचे एक सम्पूर्ण जाति विनाश का लावा पककर तैयार हो रहा है। मानव धर्म और समाज वे सड़े गले फटे हुये मुखोटे हैं जिन्हें अब नयी पीढ़ी दिखावे के लिये भी ओढ़ने को तैयार नहीं है।

भारत भी इस तथाकथित उन्नत विरासत में बहुत पीछे नहीं है। यहां भी पुरानी व्यवस्थाओं को तोड़ मरोड़कर भ्रमित कर केवल इसलिये उछाला जाता रहा है जिससे इनसे आसानी से निजात पायी जा सके। आधुनिकता की दौड़ में भारत को भी अग्रणी स्थान मिल सके। इसके कुछ उदाहरण अति संक्षेप में

आपके सामने रखता हूं।

सतीप्रथा को लेकर हाल ही में खूब कीचड़ उछाला गया। सती शब्द का अर्थ है जो जीवन के सत्य को अर्पित होकर जीये। इसमें जल मरने अथवा जलाकर मारने वाली बात कहां है ? सती सावित्री, सती अनूसूया यह सब कहां जलीं थी ? पुनः प्रथा (Custem) का अर्थ है जिसे समाज अनिवार्य रूप से नियम पूर्वक कर रहा हो। क्या देश के सामने ऐसी कोई विकट समस्या थी ? क्या इस देश में विधवायें प्रथा के रूप में जलायी जा रही थीं ? मैंने सारे देश में ऐसी कोई प्रथा प्रचलन में नहीं देखी तथा न ही किसी विशिष्ट नेता अथवा प्रधानमन्त्री के घर किसी विधवा को जलते सुना। फिर संविधान संशोधन के नाटक द्वारा सम्पूर्ण विश्व में यह अवधारण फैलाने का घृणित षडयन्त्र क्यों किया गया कि भारत में विधवायें एक प्रथा के रूप में जलायी जा रही हैं। मूल भारत की संस्कृति और लोग इतने घटिया तथा हिंसक हैं कि बेचारी विधवाओं को प्रथा के रूप में जला रहे हैं। इक्का दुक्का घटना को कोई पागल व्यक्ति ही प्रथा कह सकता है। यदि इस देश के अतीत में भी यह प्रथा होती तो राजा दशरथ की तीनो रानियों ने आत्मदाह अवश्य किया होता। तब यह घृणित नाटक का रहस्य क्या

था ? एक सुसंगठित, सुव्यवस्थित षड्यन्त्र ?

ब्रिटिष गुलामी में, लगभग 70 वर्ष पूर्व, राजा राममोहन के काल में विधवाओं के जलने अथवा जला देने की चर्चा अवश्य थी। परन्तु उसके कारण दूसरे थे। 12 वर्ष तक बिहार एवं बंगाल के बहुत से क्षेत्र अकाल की भारी मार सहते रहे। गुलाम भारतीयों की सुनने वाले आका वैसे ही नाराज थे। स्वाधीनता की हवा से बुरी तरह खफा थे। लोग भूख और महामारी से मर रहे थे। जब भी घर का कोई मर जाता, लोग उसे चिता देते। कुछ दिन बाद जब उसकी विधवा दिशा मैदान के लिये जाती तो कुछ लोग उसे जबरन उठाकर हरम कर लेते। यह सब उन आकाओं के इशारे पर होता जो हिन्दु मुस्लिम एकता को खत्म कर दंगे करवाना चाहते थे। जिससे आजादी की बात खत्म हो जाये। इन लगातार हो रही घटनाओं से सभीत लोगों के पास कोई सुरक्षा के उपाय भी नहीं थे। विधवा को हरम करने के बाद वे लोग उसके पूर्व पति की सम्पत्ति पर कब्जा भी करने का प्रयास करते थे। इसी भय के कारण विधवायें चिता की आग में कूद जाती थीं, न कि यह किसी प्रथा के कारण हो रहा था। बालक राममोहन ने अपनी भाभी को भी ऐसा करते देखा था। कुछ लोग भयवश भी विधवाओं

को जबरन आग में झोंक देते हों, ऐसा संभव है।

इसी को रोकने के लिये सनातनधर्म ने एक बड़ा कदम उठाया। गुलामी के काल में सुरक्षा के कारणों से महिलाओं का सन्यास समाप्त कर दिया गया था, उसे पुनः चालू किया गया। अब विधवा को उसके पति की चिता पर ही संन्यास देकर सती (सन्यासिन) घोषित करने की प्रथा चल निकली। सन्यासी का अतीत नहीं होता, उसका अतीत की सम्पत्ति पर अधिकार नहीं होता। इसलिये कोई उसे हरम भी करेगा तो भी पूर्व पति के घर अथवा सम्पत्ति पर कब्जा नहीं कर सकता। साख्य और प्रमाण के रूप में आप मथुरा वृन्दावन और काशी का दौरा करें। पूर्व से आयी विधवाओं की बाढ़ का दर्शन करें। सारी सच्चाई अपने आप आपके सामने आ जायेगी। उनमें से कुछ के नाम व पते नोट करें। उनके बताये पते पर जायें। उनके घर के लोगों से उस विधवा के विषय में पूछें। गृहस्वामी भयभीत हो जायेगा। एक ही उत्तर मिलेगा – वह तो सती हो गई थी। वह आज भी भयभीत है। कहीं किसी ने उसे हरम तो नहीं कर लिया ?

यही चर्चा जब मैंने एक महानेत्री से की तो उन्होने माना कि सती ऐसी प्रथा तो नहीं है न स्वामी जी ! लेकिन सती को महिमामण्डित करने से समाज को

गलत सन्देश जा सकता है। उनके तर्क सुनकर मैं अवाक रह गया था। उनका कुंवारी मां को महिमा मण्डित करना.... दूसरों का हूरों और गुल्मों को महिमा मण्डित करना.....। संन्यासी का धर्म नहीं किसी को पीढ़ा देना। अमर और अमृत जैसे शब्दों में भी केवल 'अ' के हटते ही शब्द मर और मृत हो जाते हैं। अच्छाई में दुर्गन्ध और गन्दगी ढूंढ़ना एक निहायत ही घटिया किस्म की मक्कारी हैं इसे कोई अक्ल से पैदल ही समझदारी कहेगा। राष्ट्रीय नेता राष्ट्र के चरित्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। सारा राष्ट्र उनके कृत्य से लज्जित अपमानित एवं कुण्ठित होता है। वे तो नेता हैं। उनके यहां जो होता ही नहीं, वही कोड आफ कण्डक्ट होता है।

दहेज प्रथा को लेकर भी समाज में भ्रांतियां फैलायी गयीं। इस प्रथा का आरम्भ कैसे हुआ। एक उदाहरण के रूप में देखें। गांव में एक परिवार के लड़के का विवाह, उसी गांव के एक परिवार की लड़की के साथ होना निश्चित हुआ है। सारे गांव ने दोनो परिवारों सचेत किया है कि वे ऐसा कदापि नहीं कर सकते। गांव इसका विरोध करेगा। ऐसा क्यों ? दोनो परिवारों ने जानना चाहा ! इसलिये कि ऐसा करने से नवदम्पत्ति का दायित्व दो परिवारों तक ही सीमित

रह जावेगा। वे केवल दो परिवारों के प्रति ही उत्तरदायी होंगे। इससे समाज की उपेक्षा होगी। समाज का विखण्डन होने लगेगा। हम ऐसा कदापि नहीं होने देंगे। सारा ग्राम समाज मिलकर नवदम्पत्ति को समाज में स्थापित करेगा, जिससे वे सारे समाज के प्रति उत्तरदायी हों। लड़के का पिता हल बैल देगा। लड़की का पिता बैलगाड़ी देगा। सारे गांव से उनके बर्त्तन कपड़े तथा अन्य सामग्री बटोरी जायेगी। भईया लोग मिलकर उनकी झोपड़ी बनायेंगे। विवाह सारे गांव का उत्सव है। इस प्रकार दहेज से सहेज कर नवदम्पत्ति गांव के मुखिया को प्रणाम करने जायेंगे तो वह दस बीघा जमीन का पट्टा लिखकर देगा। यह ही दहेज प्रथा है। आप बतायें इसके लिये मनु कितने बड़े दोषी हैं। उन्हें कितना बड़ा दण्ड दिया जाना चाहिये।

दोष प्रथा में नहीं हमारी दिशाहीन हो गयी सोच में है। प्रत्येक लड़की का पिता चाहता है कि उसे ऐसा दामाद मिले जिसकी तनखा भले कुछ कम हो पर ऊपर की आमदनी(घूस!!!) बहुत तगड़ी हो। लड़के का बाप चाहता है कि जब घूसखोर बेईमान के ही दाम ऊंचे हैं, तो मेरा बेटा सबसे ऊंचा मक्कार हो, जिससे बड़े दाम लगानेवाला मेरे दरवाजे पर गिड़गिड़ाने के लिये आये। अब आप ही

बतायें जो रोजमर्रा की जिन्दगी में सुविधाशुल्क के बिना नहीं हिलता, वह ससुर से दहेज नहीं लेगा तो क्या उसके चरित्र पर दाग नहीं लग जायेगा ? लोग कहेंगे कुछ गड़बड़ है।

दोश है दिशाहीन शिक्षा में। तीन ही मूल सूत्र हैं – अच्छी नौकरी, तगड़ी सुविधा और वेतन, मोटी ऊपर की आमदनी। अब आप उस शिक्षित युवक से क्या उम्मीद कर सकते हैं। वह युवक स्वयं में कितना दोषी है ?

अब भारत में भी नये युग का प्रवेश होने लगा है। पति एवं पत्नी के सम्बन्धों में आत्मा को ही स्थान दिया था मनु ने। अमर आत्मा उनके सम्बन्धों को अमरता प्रदान करे। अब वह स्थान नये युग ने थानेदार को दे दिया है। बैडरूम में उसके आदेश पर ही पति पत्नी सारे आचरण करेंगे। थानेदार की सीटी को ध्याम में रखकर। हम एक सभ्य सुसंस्कृत भविष्य की ओर बढ़ रहे हैं।

सारे विश्व ने समस्या के दो ही विकल्प खोजे , अतीत के युगों से अब तक। धर्म, आस्था, समर्पण एवं त्याग की गोंद से गृहस्थ जीवन की अल्प अवस्था को दीर्घजीवी बनाना अथवा नेता, वकील और थानेदार के द्वारा समस्या का

निराकरण ?

हम नहीं भूल सकते कि गृहस्थ धर्म, समाज रूपी महल की नींव की एक मजबूत कड़ी है। इसी पर सारे समाज का ढांचा टिका हुआ है। जरा सी भूल सारे समाज, मानवीयता और जाति विनाश का कारण बन सकती है।

मनु की सामाजिक व्यवस्था में इस विचार को गम्भीरता से लिया गया है। जन्मना सब एक हैं, बंटेगे तो गुण कर्म के विभाग से। आज भी हम गुण कर्म के विभाग से जज को जज कहते हैं, इन्जीनियर को इन्जीनियर ही कहते हैं। जरूरी नहीं कि उनके बेटों अथवा वंशजों को भी इसी नाम सम्मान से पुकारा जाये। समय के साथ यदि भ्रांतिवश कोई पद का जन्मना व्यवहार करने लगे। शास्त्री का पुत्र पिता के पद को जन्मना व्यवहार में लेने लगे, तो क्या इसके लिये व्यवस्था को देने वाला दोषी करार दिया जावेगा ? कल्पना करें रसोई को सरल एवं सुव्यवस्थित करने के लिये एक व्यक्ति ने चाकू का आविष्कार किया। सब को बहुत पसन्द आया। सबने रसोई में चाकू का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ समय उपरान्त एक व्यक्ति ने चाकू से कत्ल कर दिया। आप चाकू बनाने वाले को अपराधी मानेंगे अथवा जिसने उसका दुरूपयोग किया है, उसे दण्डित

करना चाहेंगे? मनु की व्यवस्थाओं का दुरूपयोग अपराधपूर्वक करने वाले लोगों ने मनु को दण्डित करना चाहा है। मनु की व्यवस्था से हटकर हमारे पास फिर नेता, थाना और वकील ही शेष रह जाते हैं। मनुवादी तथा मनुद्रोही दोनो को गम्भीरता पूर्वक देश, जाति एवं मानवता के हित में विचार करना चाहिये।

गृहस्थधर्म को समय के साथ त्यागकर मानव समाज को सुव्यवस्थित करने की मनु की कल्पना अद्वितीय है। वानप्रस्थ धर्म में आत्मा की भांति इच्छारहित होकर जीना, प्राणीमात्र की आत्मसमर्पित सेवा, आत्मा के घ्यान चिन्तन तप के साथ ही विश्वात्मा बनकर जीने की सामर्थ्य को प्राप्त होना, जीवन की सार्थकता, सिद्धि, विजयश्री के साथ ही अमर अनन्त आत्मा के धर्म में उत्तीर्ण होकर परम पद पाना ही है। देष, जाति, मानवता के लिये अमर उदाहरण बनने का पुन्य भी है।

वानप्रस्थधर्म के 12 वर्ष तप लेने के उपरान्त एक वर्ष का अज्ञातवास, मेरा मुझसे और सबसे ! एकान्त में तौलना होगा अपनी सामर्थ्य और साहस को। क्या सचमुच मनसा वाचा कर्मणा मैं अपनी आत्मा की प्रतिमूर्ति, प्रतिकृति एवं सामर्थ्य बन पाया हूं ? कोई इच्छा, अतृप्ति, भेद मुझमें बाकी तो नहीं है ? मेरे ढलने में

कोई कसर अथवा कमी कहीं अनजाने में रह तो नहीं गई ? मेरा मन एकान्गी और नित्य होकर आत्मा में अनन्त व्याप्त हुआ अथवा नहीं ? कोई विचार, चाहत अथवा किसी की याद सता तो नहीं रही?

यह सबकुछ ऐसा ही है जैसे स्पेसशिप के छूटने के पहले की उलटी गिनती। वहां अंक लगभग सौ तक है तो यहां अंक 365 दिन तक है। एक बार छूट कर आकाश में जाने के उपरान्त फिर लौटकर छूट गई कमी को दुरूस्त करना सम्भव नहीं होगा। एक ही भूल सारे अभियान की विफलता का कारण हो जायेगी। जन्म जन्म फिर से भटकना पड़ेगा। वह सीढ़ी जो उठती है आकाश पर, कदम के आगे बढ़ते ही पिछली पायदान लुप्त हो जाती है। एक कदम भी पीछे नहीं हट सकेगा योगी !

व्यर्थ होते एक सम्पूर्ण मानव जीवन की सार्थकता को खोजता वर्णाश्रम धर्म ! अपने होने के कारण एवं रहस्यों को जानकर जीवनजयी कल्पनाओं में सुखद जीवन के साथ ईश्वर की सत्ता बनकर जीने का अदम्य साहस ! स्वयं को

कुरेदता, स्वयं में सत्ता को पाता, स्वयं सत्ता बन अपनी सेवाओं से धरती को स्वर्ग बनाता और विजेता बन चल देता अनन्त की राह पर ! धरती की ध्वजा फहराती क्षीरसागर में ! कौन होगा फिर कोई दूसरा मनु !

अज्ञातवास के पूरे होते ही उसे अगली कक्षा में प्रवेश करना होगा। अगली कक्षा है सन्यास। 'स' अक्षर का अर्थ है – जीव, ज्योति ! न्यास का अर्थ है – निमित्त वरण !

संन्यास !

संन्यास वर्णाश्रम धर्म का अंतिम पढ़ाव है। एक तपे हुए, परिपक्व, नियम संयम एवं समर्पण की पवित्र यज्ञस्थली से ऊपर उठता एक दिव्य ज्योतिपुंज ! सूरज की परम्परा का धरती पर चलन ! भगवान श्रीराम चन्द्र ने सरयु में प्रवेश कर संन्यास का वरण किया। परम्परा को उन्होंने अपना अनुमोदन प्रदान किया। श्रीराम का अनुसरण त्रोतायुग से लेकर अनन्त युगों ने किया। द्वापर के अवतार श्रीकृष्ण चन्द्र ने देविका के तट पर (वर्तमान में वेरावल के पास) संन्यास का वरण कर संन्यास धर्म को धन्य किया। बड़ों का अनुसरण करके समाज धन्य होता है।

मैंने प्रकृति में छोटे से बड़े तक, कीट आदि तथा बड़े जीव एवं जन्तुओं में एक विलक्षण प्रतिभा देखी है। वे अपनी जाति के विस्तार पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हैं। जीवन को भोजन तथा पर्यावरण के अनुरूप सन्तुलित रखने में वे अपने बड़े हुए कमजोर साथियों को मारकर अथवा खाकर अपनी संख्या का अनुपात बनाये रखते हैं। मनुश्य यूं तो सबसे ज्यादा समझदार और समुन्नत जीव है, परन्तु

जनसंख्या को संतुलित करने के उपाय ठीक से कर नहीं पाया है। लाला की तोंद की भांति हर ओर झूल लटक ही रहा है। इस कला में वह साधारण कीट से भी पिछड़ा हुआ है। पर्यावरण की चिन्ता सर्वाधिक मनुष्य को ही है। एक ही जीव है जिसने पर्यावरण को सर्वाधिक आतंकित, मैला और विस्फोटक बनाया हुआ है। यह जीव और कोई नहीं, मनुष्य ही है।

ऐसा नहीं कि मनुष्य सदा से ऐसा ही था। जी नहीं ! उसने स्वयं को वर्णाश्रम धर्म के द्वारा सीमित तो कर ही रखा था, साथं ही पर्यावरण की सशक्त सुरक्षा एवं सेवा के व्यापक आयोजन भी कर रखे थे। धर्म का मूल ग्रन्थ प्रकृति है। नाना योनियां इसके नाना अध्याय अथवा पाठयक्रम हैं। मनुष्य की योनि इम्तहान की घड़ी है। जीव छात्र है तथा आत्मा परीक्षक। परिस्थितियों का प्रश्नपत्र तथा जीवन की उत्तर पुस्तिका। उत्तीर्ण हो तो अनन्त के राही बनो। अनुत्तीर्ण होने की अवस्था में 84 लाख योनियों के भटकाव। पर्यावरण का प्रत्येक अंग तुम्हारा घर परिवार है।

ग्रह केवल मनुष्य की सम्पत्ति नहीं हो सकता। इस पर जीव मात्र का बराबर से अधिकार है। मनुष्य अपने हित में यदि इस पर एकाधिकार कायम करना

चाहेगा तो इस प्रकृति का सर्वाधिक भीषण अपराधी होगा। प्रकृति की परिभाषा एवं तुलना में वह कैंसर का परजीवी ही कहा जावेगा। कटते जंगल, फैलती मानव बस्तियां, वन्य जीवों की निर्मम हत्यायें, उनकी प्रजातियों का समूल विनाश जब मनुष्य के द्वारा हो रहा हो तो कुदरत भी तो कह सकती है आदमी धरती का कोढ़ अथवा कैंसर हो गया है। मनु ने मनुष्य को आत्मपरक जीवन देकर कुदरत का कलंक बनने से बचाना चाहा है। उसे प्रकृति की अनुपम सेवा और प्राणीमात्र के सुखद भविष्य एवं स्थायित्व के लिये संन्यास जैसा अमृत मार्ग, उसकी जीवन पूर्णता के हित में दिया है।

शिशु की सहज, स्वाभाविक स्थिति तभी है जब वह अपनी माता की गोद में है। अन्यत्रा सहज रह पाना आसान नहीं है। मेरा शरीर सचराचर की धरोहर है। पर्यावरण ही इसकी मां है। शरीर मुझे सचराचर ने प्रदान किया है। माता को उसकी सन्तान से अलग करने से दोनो असहज हो जायेंगे।

मुझे उसके पुत्र (शरीर) को उसे अर्पित करना ही होगा। माता को उसका पुत्र धर्मपूर्वक लौटाकर, उसके कर्ज से मुक्त होकर मुझे (जीवात्मा) अपने पिता (परमात्मा) से मिलने अनन्त की राह लेनी होगी। इसी का नाम संन्यास है। जो

ऐसा नहीं कर पायेगा उसे दूसरे मार्ग पितृयान से जाना होगा। उसे पर्यावरण की अदालत में प्रस्तुत होना पड़ेगा। उसे कर्ज और सूद की वसूली के लिये पर्यावरण के नाना दण्ड नाना पतित योनियों में नाना नर्क में भोगने होंगे।

दो रास्ते हैं। एक सकाम मार्ग है, जिसका पितृयान है, इसे ही धूम्रमार्ग कहा गया है। चिता की लकड़ियों पर गमन होता है इसमें और जाता हूं मैं अपने पापों का प्रायश्चित करने नाना योनियों में। दूसरा शुक्लमार्ग है जिसका देवयान है, इसमें पीछे लौटने की गति नहीं है। इस मार्ग के पांच पढ़ाव हैं। इसको संक्षेप में जानने का प्रयास करेंगें।

1 – तत्तवमसि ! तत् त्वम् असि ! वह तुम हो । जाना मैंने ! पहचाना मैंने ! अपनी ही आत्मा का स्वरूप तुम्हें देता चला गया। बनाकर शरीर जैसा कमरा, सिर के जैसा गुम्बद लगाकर, बालों के जूड़े सा कलश सजाकर, आत्मा जैसी मूरत प्राण प्रतिष्ठित कर तुम्हारी बनाया घर तुम्हारा। नाम दिया देवालय, मन्दिर ! घर तुम्हारा, प्रतिबिम्ब मेरा ! फिर जाना मैंने तुम्हीं सम्पूर्ण सचराचर के कर्त्ता कारण हो ! तुम्हीं आदि, मध्य, अन्त और अनन्त हो ! तुम्हीं धारक, सृजक, संहारक और मोक्षदाता हो ! वह तुम हो ! तत्तवमसि!!!

2 – तेजोऽसि ! तेजः असि ! तेज हो तुम, तुम्हीं मात्र तेज हो। धारणा के सांचे में (तत्तवमसि) ध्यान के मार्ग (तेजोऽसि) से मैं ढूंढने चला तुमको, मूंद के आंख, खोजता तुम्हें भीतर अपने ! अन्तरतम गहराईयों में पाता तुम्हें ! तेज हो तुम तेज हो! भले प्रकाशित हों सहस्त्रों सूरज, मुर्दा आंखों को रौशनी कहां ? तेरे ही तेज से देख सकीं यह आंखें, युग से युग तक ! तेरे ही तेज से भस्मी के अम्बार, बारम्बार लौट सके जीवन के कोलाहल में ! तेजोऽसि ! तेजोऽसि !!

3 – एकोब्रम्हद्वितीयोनास्ति ! एकः ब्रम्ह द्वितीय ना अस्ति ! एक तू ही है। बस तू ही है। और न कोई। धारणा (तत्तवमसि) के सांचं में, ध्यान (तेजोऽसि) के मार्ग से, जाना तुझे, पहचाना तुझे ! फिर खुली आंख ! देखा चहुं ओर ! तू ही तू है, तू ही तू है ! जला दीं सब भ्रांतियों की चित्तायें ! एक चित्ता में स्वयं को जलाकर, बैठ गया हूं, सम्मुख तुम्हारे ! तू ही तू है, तू ही तू है ! एकोब्रम्हद्वितीयोनास्ति !

संन्यास में वानप्रस्थी को सबकी चित्ता जलानी पड़ती है। सम्पूर्ण भौतिकता तथा सम्बन्धों की चित्ता जलाने के उपरान्त संन्यास में वानप्रस्थी को सब सम्बन्

ों की चित्ता जलानी पड़ती है। यथा माता पिता, बहन भाई, पत्नी सन्तान, सम्पूर्ण भौतिकता तथा सम्बन्धों की चित्ता जलाने के उपरान्त उसे अपनी चित्ता भी जलानी होती है। अतीत का वह व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण उपलब्धियों, इच्छाओं, चाहत, स्मृतियों, सम्बन्धों के साथ, आज भस्म हो रहा है। वह व्यक्ति मैं कदापि नहीं हूं। मेरा जन्म यज्ञ की ज्वालाओं से हुआ है। यज्ञाग्नियां ही मेरी मॉ हैं। आत्मा ही मेरा पिता हैं। अग्नियों में ही मुझे निरन्तर तपते रहना है। अग्नि बन सारे सचराचर को आत्मा की रौशनी से वरद करूंगा। आत्मा पिता का रूप बनकर ही शेष जीवन जीना है मुझे। आत्मा की भांति सम्पूर्ण सचराचर की निष्काम आत्म समर्पित सेवा करूंगा। आत्मा की भांति ही सबसे अभेद भाव से व्यवहार करूंगा। स्त्री और पुरूष में अभेद रूप से एक आत्मा का ही भान करूंगा। स्त्री अथवा पुरूष में, गरीब अथवा अमीर में, जाति कुल अथवा धर्म में, एक आत्मा का ही भाव रखूंगा। ऊंच अथवा नीच का भेद नहीं करूंगा। पशु में, पक्षी में, जीव जन्तुओं में एक आत्मा का भाव रखूंगा। जलचर, थलचर अथवा नभचर में एक आत्मा का भाव करूंगा। प्राणीमात्र का सेवक बनूंगा। भक्त का भी भक्त बनूंगा।

4 – अहंब्रम्हास्मि ! अहम् ब्रम्ह अस्मि ! मैं ही ब्रम्ह (आत्मा) हूँ ! ध ारणा(तत्तवमसि) के पवित्रा सांचे में ध्यान (तेजोऽसि) के मार्ग से, नथकर दस इन्द्रियों रूपी दस फन वाला नाग कालिया, होकर आत्म समाधिस्थ (एकोब्रम्हद्विितीयांनास्ति) मैं करने लगा तन (शरीर) रूपी सामिग्री को आत्म ज्वाला में यज्ञ, अर्पण ! होकर यज्ञ तन रूपी सामिग्री ब्रम्ह ज्वाला में, आराध्य (आत्मा) रूपी सांचे में ढलने लगी, सिमटने लगी ! मेरे ही षरीर में पुत्र रूप में मैं जन्मने लगा ! तब जाना मैंने, मैं ही ज्वाला रूप माता हूँ ! मैं ही तन रूप सामिग्री हूँ। मैं ही आत्मा रूप पिता हूँ।

यज्ञ होकर तन रूपी सामिग्री आत्म ज्वाला में, लौटती हिरण्य (स्वर्णिम) ध ाराओं में, धारणा के पुष्ट सांचे में ढलने लगी है, जन्मने लगी है। अपने ही शरीर में मैं पुत्र रूप जन्मने लगा हूँ ! मैं ही माता हूँ, मैं ही पिता हूँ, मैं ही जन्मता पुत्र हूँ ! तन सामिग्री को आत्मज्वालाओं में यज्ञ करने वाला यज्ञकर्त्ता भी मैं ही हूँ ! अहंब्रम्हास्मि !

धारणा से ध्यान – ध्यान से समाधि – समाधि से यज्ञ और – यज्ञ से योग ! मानव की आकाशजयी कल्पना !

5 – सोहँ ! सोहँऽस्मि ! वह मैं हूँ ! So am I ! यहां पर एक अण्डे का उदाहरण लेंगे। तुमने देखा अण्डे का जल, धारणा (तत्तवमसि) के सांचे में, ध्यान (तेजोऽसि) के मार्ग से, समाधिस्थ (ऐकोब्रम्ह द्वितीयोनास्ति) होता, धीरे धीरे चूज़े (बच्चे) का रूप धारण कर लेता है (अहंब्रम्हास्मि)। हो जाता है जब बच्चा पूर्ण, तो एक दिन अण्ड के कपाल को फाड़कर निकलता है बाहर, देखता है चहुं ओर, और सोहँ का नाद करता उड़ जाता है नई अनजानी राह पर !

ठीक इसी प्रकार, धारणा के सांचे में, ध्यान के मार्ग से, नथकर दस इन्द्रियों रूपी दस फन वाला नाग कालिया, हो समाधिस्थ, करने लगा था मैं यज्ञ, तन रूपी सामिग्री को आत्म ज्वालाओं में ! होकर यज्ञ तन सामिग्री आत्म ज्वाला में, धारणा (आराध्य, आत्मा, मूर्ति) के सांचे में ढलने जमने लगी थी। भजता रहा था जिन्हें आराध्य रूप में कल तक, आज उसी सांचे में ढल तद्रूप जन्म ले रहा हूँ मैं। हो गया जब रूप पूर्ण मेरा ! ढल गया जब मैं अपने ही आराध्य के सांचे में ! तो एक दिन अण्ड (ब्रम्ह + अण्ड – ब्रम्हाण्ड) रूपी कपाल को फाड़ हुआ बाहर ! सोहँ का नाद करता अनन्त में विलीन हो गया, खिलौना खिलाड़ी हुआ, उपासक – उपास्य हो गया ! चल दिया अनन्त की अनजानी राह पर !

सोहंऽस्मि ! सोहंऽस्मि !! 'शुक्ल कृष्णे गतीहयेते जगताशाश्वते मतेकृकृगीता

दो रास्ते हैं। चाहे तो अण्डे के खोल में ही सड़ जा अथवा ज्योतियों के पंख लगा, आराध्य का रूप ले, उड़ चल अनन्त की राह में ! एक नपुंसक जिन्दगी है तो दूसरी सृष्टी एवं उत्पत्ति की जगमग !

मनु की व्यवस्था जैसी विषद कल्पना हमें और कहीं पर भी नहीं मिलती है। मनु की प्रत्येक कल्पना में सृष्टी का मूल सूत्र दूर क्षीर सागर में कहीं समाया हुआ है। अपने इसी विचार को व्यवस्थाओं में मनु बारम्बार दुहराता सा लगता है। मनु की इसी कल्पना को सृष्टीवेद अर्थात ज्योर्तिवेद भी जीवन की संरचना में दुहराता हुआ सा लगता है। पृथ्वी पर बालक उत्पन्न नहीं हो सकता। उसे माता के गर्भ का क्षीरसागर चाहिये। क्लोन बनाने में भी हमें गर्भ के क्षीरसागर की जरूरत रहती है। हम इसे नकार नहीं पाये हैं। पेड़ पौधों में भी उत्पत्ति के हित में हमें कहीं न कहीं क्षीरसागर की षरण के बिना काम नहीं चलता। क्षीरसागर (Space) और माया (Gravity) का खेल ही सृष्टी लीला है। दोनो ही सृष्टी के हित में परमावश्यक हैं। महाविष्णु क्षीरसागर में रहते हैं तथा माया उनके चरणों की दासी है। सनातन धर्मग्रन्थों के व्यापक वैज्ञानिक शोध की तथा

गहन अध्ययन की जरूरत को अब समझा जाना चाहिये। सब आख्यायें कोरा संयोग मात्र कदापि नहीं हो सकतीं।

दूसरी ओर अर्थात जरा संक्षेप में पितृयान में भी झांकते चलें। देखें मनु वहां क्या रहस्य प्रकट करने वाले हैं। शुक्लमार्ग जिसका देवयान (आत्मयान) है, उसे हमने अति संक्षेप में जानने का प्रयास किया है। अब देखेंगे सकाममार्ग जिसका पितृयान (प्रकृति, पेड़ों की लकड़ियों का यान) है। इस मार्ग में आवागमन है। पराजित होकर दन्डित होने की बात कही गयी है।

हम एक घर में चलते हैं। एक अर्थी सज रही है वहां पर ! कोई घर का मर गया है। घर में सूतक (छूत) वास कर गयी है। घर के मन्दिर बन्द कर दिये गये हैं। अब कोई पवित्र कार्य नहीं हो सकता। तेरहवीं पर्यन्त अर्थात तेरह दिन तक छूत बनी रहेगी। जब उत्पन्न हुआ था तो बारहा दिन का सूतक मनाया गया था। अब इस वर्तमान जन्म के पाप का एक दिन अधिक जुड़ गया उसमें। जन्मकाल का शूद्र, यज्ञोपवीत के संकल्प धारण से द्विज बना, मृत्युकाल में पुनः महाशूद्र हो गया।

मरते ही पांव दक्षिण दिशा में कर दिये गये हैं। क्यों ? उत्तर देवगोल अर्थात

आत्मगोल है। दक्षिण यमगोल अर्थात प्रायश्चित की राह है। जब भी सूर्यदेव उत्तरगोल में प्रवेश करते हैं, हम मकर संक्राति का महोत्सव मनाते हैं। इसे खिचड़ी का त्योहार भी कहते हैं। दक्षिणगोल में देवत्व सो जाता है तथा उत्तरगोल में देवत्व जाग उठता है। आदि प्राचीन भारतीय परम्परा है, हम ग्राम के उत्तर में देवालय बनाते हैं तथा ग्राम के दक्षिण में शमशानघाट। कुछ भोले विद्वान इसे मैगनेट के ध्रुवों से जोड़ने लगते हैं। मनु और ज्योतिर्वेद को इससे कुछ लेना देना नहीं है। वहां पर इसकी कल्पना अथवा विचार भी नहीं है।

चार कन्धों पर अर्थी चल दी है शमशानघाट की ओर ! मन दशानन, जीव जानकी को फिर बान्धकर लिये जा रहा है लंका, दक्षिण, शमशानघाट की ओर ! छूट गये हैं जीवन के आत्मक्षण ! श्रीराम !! उत्तर का मन्दिर है अवध मेरा ! दक्षिण का शमशानघाट मेरे जीवन की लंका !! उत्तरायण हो न सका, जीवन को गुरूकुल, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास और फिर अनन्त की यात्रा दे नहीं सका। आसक्त जीवन की भ्रमित देहरी छूट न पायी, छूट गये आत्मा श्रीराम मुझसे ! कन्धों पर होकर सवार आ पहुंचा हूँ शमशानघाट में !

अब इसका क्या हो ? तन रूपी सामिग्री को आत्मज्वाला रूपी यज्ञकुण्ड में,

जीवात्मा रूपी यजमान, आत्मा रूपी आचार्य तथा प्राणवायु रूपी उपाचार्य के मार्गदर्शन निर्देश पर यज्ञ करता, अनन्त की राह लेता, परन्तु ऐसा कुछ हो न सका। आत्मा और प्राणवायु देह का परित्याग करके जा चुके हैं। अब जीवात्मा ही खण्डित देह में फंसा हुआ है। अपनी आसक्तियों को छोड़ नही पाया, छूट गया स्वयं आत्मा अनन्त से।

अब इसे सकाममार्ग से धूम्रमार्ग से, पितृयान से भेजो। जिन वनस्पतियों से इसने शरीर उधार में लिया है, उनका ही यान बनाओ। यह अब उन्ही वनस्पतियों रूपी पित्रों के यान में गमन करेगा, देवयान छूट गया इसका। बेटों की तथाकथित आसक्तियों के कारण इसने आत्मा ईश्वर खोया हैं अब बेटा ही बन यजमान छुड़ाये इसको। बेटा ही चित्ता को अग्नि देगा। अग्नि वह चाण्डाल के घर से मांग कर लायेगा। जिससे उसे यह कभी न भूले कि आत्मा की अग्नि खोने वाला चाण्डाल की आग ही पायेगा। ब्रम्हज्वाला और चाण्डाल अग्नि में से एक को चुनना होगा।

यज्ञ की भांति ही चित्ता को सजाया जायेगा। पूजा, अर्चना एवं परिक्रमा के उपरान्त पुत्र अग्नि देगा। जब उठने लगेंगी लपटें धू धू कर, लड़के को कपाल

क्रिया द्वारा जीवात्मा कोशत देह से अलग करने के लिये कहा जायेगा। शरीर ही सामिग्री है, वही जलेगा। जीवात्मा नहीं जलाया जावेगा। जीवात्मा जो वस्तुतः यजमान था, उसे कपाल क्रिया द्वारा पुत्र अलग करेगा। मनु यहां भी जीवात्मा और शरीर को एक नहीं मानता। दोनो को अलग अलग व्यवस्थाओं में गमन कराता है। जीवन पहेली के इस अतिसूक्ष्म रहस्य को अनदेखा करके जीवन के रहस्यों को जानना क्या सम्भव होगा ? मनु स्पष्ट रूप से जीवन को शरीर से नहीं जीवात्मा से ही मानता है। जबकि आधुनिक विज्ञान शरीर को ही जीवन मानता है। शरीर जीवन का रक्षक घर है, जीवन नहीं है। जीवन तो जीवात्मा, आत्मा, प्राणवायु का पूरक वाक्य है। यह एक व्यापक शोध का विषय है। उत्तर भविष्य के गर्भ में समाये हुए हैं।

चित्ता के जल जाने के उपरान्त भस्मी को एक पात्र में इकट्ठा करके घर में रख दिया जाता है। इस पात्र को ढक कर रखते हैं। जो बेटा चिता को अग्नि देता है, उससे घर के लोग भी दूरी रखते हैं। उसे घर के बाहर बरामदे मे रखते हैं। खाना भी दूर से देते हैं। कारण ? जिसे इसने जलाया है, उसका जीवात्मा अब प्रेत बनकर इसकी देह में अपनी आसक्तियों के कारण वास करेगा। इसकी

इन्द्रियों से गीता, गरूड़पुराण, भागवत आदि नाना ग्रन्थों का श्रवण करेगा। प्रायश्चित करेगा, तब कहीं ब्रम्हभोज (दसवें का भोजन) के उपरान्त यथा योनि गमन करेगा।

एक बार फिर मनु का ही विश्वास इन परम्पराओं में धड़क गया है। शरीर भले जल गया है, परन्तु जीवन प्रेतात्मा के रूप में अब भी अस्तित्व में है।

इन्हीं परम्पराओं को मैंने विश्व भर में नाना आदिम जातियों में कुछ हटकर अपभ्रंश रूप में पाया है। वे समय के साथ काफी बदल चुके हैं। उन्होंने नये धर्मों को भी अंगीकार कर लिया है। परन्तु आदि प्राचीन धारणायें उनकी आज भी यथावत हैं। मैंने एक मुखिया से पूछा कि वे अपने लोगों की मृतात्माओं से इतने भयभीत क्यों होते हैं ? रोज इतने जानवर मरते हैं अथवा वे मारकर खाते हैं तो वे उनकी आत्माओं से क्यों नहीं डरते ? उसका उत्तर सुनकर मैं अवाक रह गया। उसने कहा,' आदमी की योनि तथा पशु की योनि में भेद है। आदमी पैदा होता है, परमेश्वर को पाने के लिये। उसकी जिन्दगी की एक मंज़िल है, जिसे पाने के लि़ये ही उसे मनुष्य की योनि मिली हैं। यदि वह ऐसा नहीं कर पाता है तो वह बुरी जीवात्मा है। उससे सबका डरना स्वाभाविक है। पशु के

साथ ऐसा कोई कारण नहीं हैं इसलिये वह सदा अच्छी जीवात्मा है। मरकर भी सबका भला करती है।'

इसी प्रकार के मिलते जुलते उत्तर मुझे लगभग उन सभी आदिम जातियों में मिले हैं, जिन्हें हम सभ्य नहीं मानते हैं। इन जातियों का फैलाव विश्व भर में है। वे एक दूसरे को जानते भी नहीं हैं, फिर भी उनकी आदि प्राचीन मान्यताओं में अदभुत साम्य है। हिमालय पर्वत से फिलीपीन्स के जंगलों तक एक ही धारणा कुछ बदलाव लिये नज़र आती है। आदमी के मरने पर उसकी गुफा का सदा के लिये उसके स्वजन हिमालय में परित्याग कर देते हैं तो फिलीपीन्स में आदमी के मरने पर उसकी सम्पूर्ण झोपड़ी को ही जलाकर राख कर दिया जाता है।

सभ्य जगत का विज्ञान तथा वैज्ञानिक सोच अभी तक शरीर के कोशों में ही उलझी हुई है। रूह, सोल अथवा जीवात्मा की ओर झांकने को भी तैयार नहीं है। यह स्वयं में आश्चर्यजनक एवं वैज्ञानिक सोच के मापदण्डों के सर्वथा विपरीत है। किसी भी विचार को अस्वीकार करने नकारने के पहले उस पर गम्भीर चिन्तन विचार एवं शोध करना एक मान्य धर्म है। किसी विषय को बिना

जाने बिना समझे, अकारण ही उस पर निर्णय कर लेना मूर्खता कही जाती है। सारे विश्व का अतीत, उनके धार्मिक विश्वास बिना किसी ईमानदार शोध के झुठलाना किसी प्रकार से भी उचित नहीं हो सकता।

जिन्हें हम अन्ध आस्था, अन्ध मान्यता कहते हैं, हम यह क्यों भूल जाते हैं कि अन्ध के अतिरिक्त उनमें आस्था तथा मान्यता शब्द भी हमने जोड़ रखे हैं। हमने भी उन्हें झूठ नहीं कहा है। तब आप बिना किसी व्यापक अनुसन्धान के उन्हें नकारने का दुस्साहस किस प्रकार तथा किस नैतिकता के आधार पर कर सकते हैं ?

ज्योतिर्वेद जिसे सृष्टिवेद कहलाने का सम्मान प्राप्त था, जिसने समय को गणित में बान्धने नापने के महाविज्ञान को प्रकट किया, जिसने ग्रहों की दूरियों को नापने के विज्ञान को सहज एवं व्यापक बनाया, जिसने ग्रहों की मायाओं के नाना प्रभावों को सूक्ष्म एवं सटीक रूप से जानने के महाविज्ञान को प्रकट किया, क्या उसे मात्र अन्ध आस्था कह कर ठुकरा देना उचित होगा ?

श्रद्धेय स्वामी सनातन श्री का अमर साहित्य

* ज्योतिर्वेद के विभिन्न सोपान	Rs. 80/-	$ 8
* सनातन दर्शन के नौ अध्याय	151 रुपये	$ 21
* साधना विज्ञान	101 रुपये	$ 11
* सरयू के तट	101 रुपये	$ 11
* वेद गंगा	10 रुपये	$ 1
* गृहस्थ धर्म की पूर्णता	10 रुपये	$ 1
* विनायक बुद्धिमतां / * अधियज्ञ मित्र / * अश्वत्थ मित्र / * सीपी के मोती / * कर्म : परमेश्वर / * लव कुश / * यज्ञोपवीत / * दशरथ मार्ग प्रत्येक	5 रुपये	$ 1
* गीता : दिव्य दर्शन	प्रकाशनाधीन	
* रहस्य लीला : जादू और जादूगर	प्रकाशनाधीन	
* सनातन वाणी	प्रकाशनाधीन	
* Krishna : In The Mirror of Mysteries Revealed	Rs. 70/-	$ 7

श्री सनातन आश्रम

गौराबाग, (समीप गोडूम्बा पुलिस स्टेशन) कुर्सी रोड, लखनऊ (यू.पी.)
दूरभाष : 0522. 361611, 361796, 362386, *Email : ssshri@sify.com*

फ्यूचर फॉरच्यून

बी–4, आरिफ विकास चैम्बर, सेक्टर – 2, विकास
नगर, कुर्सी रोड, आवास विकास कॉलोनी, लखनऊ

निष्काम पीठ प्रकाशन

1009, इन्द्रप्रकाश बिल्डिंग, 21,
बाराखम्बा रोड, नई दिल्ली – 110 001.
दूरभाष : (011) 3717738, 3717743,
Email : editor@thetimesofastrology.com